

## बदलाव के औचित्य का सवाल

### □ योगेन्द्र

सम्माननीय अध्यक्ष व साथियों, मेरी स्थिति यह है कि जहां तक लोक जुम्बिश का प्रश्न है, उसके औपचारिक गुण-दोष में हम कुछ कह नहीं सकते, उसके एकदम बाहर हैं, बाहर खड़े हुए लोग हैं। लेकिन व्यापक अर्थों में देखा जाये स्वैच्छिक कार्यकर्ता होने के नाते, शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले समूह का सदस्य होने के नाते, हम निश्चित रूप से, जब से राजस्थान में लोक जुम्बिश कार्यक्रम स्थापित और संचालित हुआ है और उसके विभिन्न चरणों और दौर में, एक दर्शक के तौर पर, उसमें हम लोग रुचि लेते रहे हैं और उससे निकलने वाली व्यापक सीख और अनुभवों से लगातार अपने काम को समृद्ध करने की कोशिश हमने की है। ये कार्यशाला निश्चित रूप से, जैसा अभी सिंह साहब ने कहा, पहली बार और उससे पूर्व शारदा जी ने एक बात की कि अगर कहीं मतभेद हैं, तो मतभेदों को एक साथ रखकर एक मंच पर विमर्श की स्थिति उत्पन्न करने की कोशिश और संभावनाएं लगातार होनी चाहिए, रखी जानी चाहिए और एक ऐसी ही कोशिश की गयी है कि यहां हम अपने अपने दृष्टियों के आग्रह को और अपने अपने संदर्भों को छोड़कर अगर व्यापक कुछ अर्थ हैं तो उनको सुलझाने की कोशिश कर सकें। कार्यशाला के लिए जब विषय को चुनने की बात आयी थी कि इसका क्या नामकरण हो, तो इसका नामकरण किया गया कि 'राजकीय शिक्षा कार्यक्रमों में सरकारीकरण बनाम समाजीकरण का प्रश्न', जो पर्चा आमंत्रण के लिए आपको भेजा गया है, उसका यही शीर्षक है।

हमने चर्चाएं की हैं और इसमें कुछ इस ढंग से है कि जो राजकीय कार्यक्रम हैं, राज का शायद अर्थ यह रहा है कि जो सार्वजनिक, व्यापक तौर पर सार्वजनिक समुदाय को प्रभावित करने

वाले, जो कार्यक्रम हैं और जो हमारी राजकीय मान्यताओं के अन्तर्गत चल रहे हैं, राज्य द्वारा मान्य घोषित हैं और मान्य हैं, उन कार्यक्रमों के संचालन की पद्धतियों के दो .... जिस समय ये कार्यक्रम सोचा गया था तो उससे पूर्व इसी तरह की पोजीशन अखबारों में थी कि सरकारीकरण बनाम समाजीकरण का द्वन्द्व है, और एक और कोशिश यह है कि इस पूरे कार्यक्रमों को हमारे मौजूदा राज्य के नियंत्रण की मैनेजमेंट की जो प्रक्रियाएं, परंपरागत पद्धतियां हैं जिसमें उल्लेख किया गया है कि नौकरशाही का एक ढांचा है और जिसमें केन्द्रीकरण की अपनी तरह की प्रवृत्तियां हैं, उनके अन्तर्गत लाने की कोशिश एक ओर से हो रही है। और दूसरी ओर से कहीं कोशिश है कि वो इन पद्धतियों में, इन व्यवस्थाओं में एक लचीलापन उत्पन्न करें और जो लक्ष्य है समाज के सामने, शिक्षा के सार्वजनीकरण का प्रश्न उठा, शिक्षा की गुणवत्ता का प्रश्न उठा और शिक्षा की एक अधिक विकसित परिभाषा और उस परिभाषा के मूर्त रूप को किसी तरह हासिल करने के प्रश्न भी हमारी चर्चा में होते हैं तो सोचा ये जाता था कि दूसरी ओर कोशिश हो रही है कि हम शिक्षा के सार्वजनीकरण के साथ साथ में इसकी परिभाषाओं को, उसके स्वरूप को विकसित करते हुए जायें और उस प्रक्रिया का कोई नाम हो सकता है तो वह समाजीकरण के तौर पर शायद चुना गया नाम है, क्योंकि समाज के व्यापक हित में हो और समाज के व्यापक तौर पर प्रतिनिधित्वकारी या सहभागी तरह की प्रक्रियाओं के माध्यम से संचालित हों।

अब इन दोनों शब्दों का इस्तेमाल, हम जितनी चर्चा यहां हुई है उस चर्चा से बाहर जो कुछ भी जानने और देखने को मिलता रहा है, तो दोनों ओर से किया जा रहा है, शब्दों से बाहर कोई अपने

पक्ष को रख नहीं रहा है, उसमें कुछ चीजें जोड़ी गयी हैं अभी जैसे एकाउन्टेबिलिटी का प्रश्न, साथ साथ में ट्रान्सपेरेंसी का प्रश्न जनता के प्रति, और सहभागिता के स्वरूप और अर्थों के प्रश्न, ये निश्चित रूप से ऐसे प्रश्न हैं जो न केवल लोकजुम्बिश से जुड़े हुए हैं बल्कि व्यापक सामाजिक, सार्वजनिक कर्म के संदर्भ में आजकल सबसे प्रचलित शब्द हैं और चूंकि हम आज बैठे हैं तो इन पर शायद बात करें।.... अभी तक जो बातें कहीं गई वो अधिकारिक रूप से पूरे, मैं विवाद नहीं कहूंगा ये संवाद है और जो भी स्थिति है वो संवाद के सम्बद्ध पक्षों की ओर से रखी गयी है। तो लगभग सभी उन प्रश्नों को चिन्हित किया गया है जिनके ऊपर ध्यान आकर्षित किया गया है हम सबका, जो लोक जुम्बिश और लोक जुम्बिश के मौजूदा चरण की स्थितियों से संबंध रखते हैं।

बाहर से देखते हुए हम लोग लोक जुम्बिश के बारे में ये समझ रहे थे कि लोक जुम्बिश, जो हो सकता है किन्हीं मंचों के माध्यम से कहा जाता है कि गैर सरकारी स्वैच्छिक शिक्षा का आन्दोलन है लेकिन हमने इस बात को कभी स्वीकारा नहीं है कि वो एक स्वैच्छिक शिक्षा आन्दोलन है, बल्कि निश्चित रूप से सरकार के द्वारा स्थापित किया हुआ, सरकार की सहभागिता से संचालित होने वाला एक संस्थान है जिसमें सोच यह था कि सार्वजनिक कामों में सरकार की जो मौजूदा पद्धतियां हैं, उन पद्धतियों में कितना बदलाव किया जा सकता है, कितना बदलाव किया जाना चाहिए। अगर हम इसको सरकार से बाहर का आन्दोलन मानते हैं तो प्रश्न यह है कि ज्यादा चिंता की स्थिति नहीं है, कि ठीक है सरकार से बाहर का आन्दोलन है, तो सरकार अपने ढंग से उसके प्रति जो भी उसे ठीक लगता है, समय समय पर जैसी सरकार आती है वैसा रख ले सकती है। सरकार ने लिया है, पहले भी लिया सात वर्ष से और अभी भी ले रही है, तो सरकार की ओर से कोई ज्यादा चिंता नहीं होनी चाहिए।

लेकिन प्रश्न ये नहीं है कि वह सरकार से बाहर है, ऐसा कोई आन्दोलन रहा है। बल्कि उसकी पूरी जेनेसिस जो है, उसकी उत्पत्ति जो है, वो एक ऐसे सोच के दायरे में रही है जहां यह माना गया है कि जन सहभागिता को सरकार की पूरी मौजूदगी में और सरकार द्वारा, सरकार के अपने जो नॉर्मस हैं और सरकार की अपनी जो संरचनाएं हैं, उनके समर्थन से जन सहभागिता को एक व्यापक अर्थ दिया जा सकता है। इस तरह की कोशिशें पूर्व में की गईं और एक सबसे बड़ी कोशिश जिसका शारदा जी ने यहां जिक्र किया वो लोकजुम्बिश से पहले की इस प्रदेश में उत्पन्न हुई संकल्पना महिला विकास कार्यक्रम थी। हमने देखा कि वह संकल्पना उस कार्यक्रम

के माध्यम से एक बार तो कसौटी पर रखी गयी और उसका हथ्र और उसके जो परिणाम थे उससे हम सब लोग परिचित हैं। उसमें ये साबित हुआ कि अभी हमारे प्रदेश में, मैं बहुत ही स्थानीय संदर्भों में यह बात कह रहा हूं कि सरकार और सरकारी तंत्र की ये मनःस्थिति नहीं है कि वो एक स्थिति से ज्यादा चीजों के खुलेपन का स्वागत कर सके।

निश्चित रूप से जबावदेही के प्रश्न और अन्य प्रश्न अपनी जगह वाजिब हैं परन्तु मैं उसमें से निकालकर ये बात इसलिए कह रहा हूं कि अपने ढांचों में लचीलापन, जनता के सामने सीधे सीधे रुबरु होने की प्रक्रियाएं और उनके माध्यम से निरंतर सरकार के तंत्र की प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने की आत्म-विश्लेषण की क्षमता, ये हमारे पहले अनुभव में भी उभरकर आया कि वो एक सीमा के बाद में रुक जाती है। उस रुकने का दोष किस ओर का होना चाहिए, मुझे पता नहीं, किस ओर है ये भी मैं नहीं जानता क्योंकि हम इस तरह से उसमें भागीदार बने नहीं, हो सकता है कि दोष दूसरी ओर हो या हो सकता है कि दोष सरकार की ओर हो या दोनों का मिला जुला हो। पर मूल बात यह है कि दोनों की मिलकर ये जो कोशिश थी एक संकल्पना थी, वह संकल्पना कुछ कदम जाने के बाद आगे नहीं बढ़ पाई। उसके जो भी विशिष्ट कारण होते हैं क्यों होते हैं उनको छोड़ दें, व्यक्ति कौन हैं, घटनाक्रम क्या है, घटना चक्र क्या है, उससे इतर हम देख सकते हैं कि वो एक स्थिति में चलती है, उसके बाद में वो रुक जाती है और पुनः अपनी पुरानी स्थिति में रुपान्तरित हो जाती है, परंपरागत रूप में ट्रान्सफर हो जाती है महिला विकास कार्यक्रम आज भी चल रहा है इस प्रदेश में लेकिन वो महिला विकास कार्यक्रम जिसकी संकल्पना पहले की गयी थी और आज जो चल रहा है वो एक दूसरे के विपरीत से हैं, तो इस तरह के ट्रान्सफॉर्मेशन के दौर से हम एक बार पहले भी गुजरे। अब पुनः लोक जुम्बिश ने हमें एक मौका दिया, पांच सात साल उसको अनुभव करने का मौका दिया इस प्रदेश को शिक्षा के क्षेत्र में और कोशिश क्या थी, यह था कि जो भी मूलधारा के, सरकारी तंत्र के औपचारिक निकाय हैं वो चाहे चिंतन के संदर्भ में, शोध के संदर्भ में हों, कर्म के संदर्भ में हों, वो उसके दायरे को बढ़ायें और औपचारिक निकायों की सीमा से बाहर जो कुछ भी सामाजिक पहल हैं, जो सामाजिक सामर्थ्य है, उसको हिस्सा बनाया जाये और जो व्यापक चुनौती है हमारे देश और समाज के सामने, शिक्षा के सार्वजनीकरण की और शिक्षा की जो परिभाषा है जो रोहित, विनोद और शारदा जी ने की कि वो साथ साथ में कहीं शिक्षा के नये अर्थों की भी तलाश की गयी थी और उसमें औपचारिक तंत्र से बाहर की संभावनाओं को, संबंधों को पिरोने की कोई

कोशिश की गई थी । ये संकल्पना थी इसकी और इसमें पुनः लेकिन दायरा ये रखा गया कि निश्चित रूप से राज्य के वरदहस्त और राज्य की परिधि के अन्तर्गत ही वो होनी चाहिए । ये प्रश्न नहीं है लेकिन करने की एक चोइस थी, प्रश्न ये नहीं है कि केवल वही हो सकती हैं या उसके बाहर भी हो सकती हैं लेकिन चोइस ये थी कि उसके दायरे के अंदर ही हो ।

इसने पुनः हमें एक ऐसे मुकाम पर पहुंचाया है कि वहां जो भी पार्टनर्स, जो भी स्टैक होल्डर्स रहे हैं, जहां पर इसके मूल में परस्पर अविश्वास की अभिव्यक्ति हो रही है, जो लोग बाहर हैं वो ये जान रहे हैं कि आपस में कुछ चीज ठीक नहीं है । अजीत सिंह जी ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा, कुछ उदाहरण दिये कि कैसे व्यापक दार्शनिक, सैद्धांतिक ओर विचार-विमर्श से, उन्होंने बहुत ठोस उस कोण, उस सिचुएशन की ओर इंगित किया कि वो कैसे, कहां पर किस ढंग की भूमिकाएं उनकी रही हैं और वो निभा रहे हैं । ये यथार्थ है, किसी चीज को यथार्थ की ओर लाने की कोशिश है और बात यही आयी है कि अगर, देखिए एक ओर से हम किसी चीज को देखते हैं, पिछले दिनों के घटनाक्रम से जो मुद्दे हमारे दिल दिमाग में उठे थे उनका दबाव कुछ भिन्न था । अब विचार-विमर्श करने की स्थिति उत्पन्न हो गयी है बिना किसी प्रयास के, कई बार प्रक्रिया में ऐसा होता है । इस समय बात ये हो रही है कि अब अगर लोक जुम्बिश में बदलाव हैं, उन बदलावों का, कहीं किसी जगह रेजिस्टेंस है तो पूर्व में जो लोग लोक जुम्बिश में रहे हैं उनकी तरफ से है, वो एक तरह से यहां रेजिस्टेंस के तौर पर हैं, और कोशिशें हैं वो उसमें बदलाव की कोशिश है। बदलाव शब्द अगर सार्थक है तो तभी जब वह अपने औचित्य को सिद्ध करता है कि वो औचित्य क्या है जिनके कारण उन बदलावों की आवश्यकता आ रही है । और अगर उस पर कहीं प्रतिवाद होता है तो ये जिम्मेदारी होती है कि उसके साथ संवाद करें कि क्यों, और शायद थोड़ा सा धैर्य रखना भी आवश्यक होगा, क्योंकि अचानक कुछ दिनों में कुछ चीजें ऐसी हो जायें जो बदलने वाली हैं तो यह जरूरी है ।

बदलाव के औचित्य को पेश किया जाये, जो प्रक्रियाएं, सर्वमान्य प्रक्रियाएं हैं उनके माध्यम से उन पर विचार-विमर्श हो और ये भी सुनिश्चित किया जाये कि जो बदलाव है वो अब तक जो सकारात्मक उपलब्धि है उसके ऊपर तो किसी तरह का विपरीत असर नहीं डाल रहा है । ये बिल्कुल सुनिश्चित किया जाना चाहिए जब हम बदलाव की बात करते हैं । दूसरी ओर से, इसको सुनने और समझने के लिए काफी खुलापन होना चाहिए, ये दूसरी ओर से अपेक्षा है कि अगर कोई नये प्रश्न हैं, अगर किन्हीं स्थितियों

के बारे में कोई दूसरा दृष्टिकोण सामने रखा जाता है तो उसे सुनने और समझने की क्षमता, जो पहले से एक परिवार है, काम करने वालों का समूह है, उसके अंदर भी होनी चाहिए ।

लेकिन समस्या यह है कि जिन प्रक्रियाओं को हम यह मानकर चल रहे हैं कि वे बहुत पारदर्शी हैं और वो बहुत भागीदारी के साथ में, उनमें सहभागिता को भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण के तौर पर माना गया है, इन प्रक्रियाओं को, उनका पूरा तंत्र एक स्थापित हो चुका है, लेकिन उसके बावजूद ऐसा क्यों होता है कि जो मुख्य सहभागी हैं, पार्टनर्स हैं, वे एक दूसरे को समझ सकने या समझा सकने की स्थिति में नहीं है । पहले कौन लोग थे इसमें और बाद में कौन नहीं है, इस सवाल से मैं बिल्कुल बाहर हूं । मेरे दिमाग में जो प्रश्न हैं और चिंता है वो ये है कि ऐसी परिस्थिति क्यों उत्पन्न हुई, जबकि इस पूरी संकल्पना में जो सरकार से कहीं अधिक खुलेपन की अपेक्षा करती है, उसकी ओर से यह इसलिए कह रहा हूं कि जब हम लोगों ने देखा कि लोक जुम्बिश का मतलब क्या है, लोक जुम्बिश का जो स्वायत्तशासी चरित्र है, उसके शासन करने वाले लोग कौन हैं, मतलब उसको तय करने वाले लोग कौन हैं, तो देखिए उसमें तो बहुत साफ उभरकर आता है कि उसमें अधिकांश लोग वो हैं जो सरकार के महकमों से आ सकते हैं और बहुत सारे लोग आफिशियल हैं, अगर दो चार लोग हैं तो वो हमेशा सरकार के द्वारा मनोनीत होंगे । उसके अंदर यह जिक्र है कि या तो सरकार के लोग हैं या सरकार के द्वारा मनोनीत लोग हैं जो इस स्वायत्तशासी निकाय का संचालन करेंगे । ये उसका चरित्र है और बहुत वाजिब है कि उसमें से कुछ लोग बदल जाते हैं और वो अपने हिसाब से उसका संचालन करना चाहते हैं तो उसमें अलोकतांत्रिक क्या हो रहा है ? यह कहा जा सकता है कि इसमें तो कुछ नहीं है, आपने तो इसे डिजाइन ही ऐसा किया है । लोगों का तो सबसे पहले ये अधिकार है, अपनी बात और पक्ष रखने का, इस आन्दोलन के बारे में इस मुहिम के बारे में तो ये ।

अब इसमें सात वर्ष तक ये लोग चुप क्यों थे, ये तो सहभागी थे शायद, अब ऐसा क्या हुआ है कि इतने समय से जो नहीं जान पा रहे थे, वो आप जानते हैं और अब आप चिन्तित हैं कि व्यापक एकाउन्टेबिलिटी के दायरे में चीजों को लाना चाहिए और बदलाव के औचित्य का जो सवाल है वो भी बहुत साफ तौर पर सामने प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है । क्या आम जनता में, बाकी लोगों में चर्चा होने से पहले लोक जुम्बिश की जो शापी-परिषद है, उसके जो कार्यकर्ताओं का समूह है, उसका जो व्यापक तंत्र, जो ढांचे उन्होंने गठित किये हैं, वहां तक वो चीजें कैसे, क्यों हुईं ? अगर

मुझे कुछ ऐसे हैं कि वहां चर्चित होने के नहीं हों लेकिन बहुत महत्वपूर्ण है तो पुनः प्रश्न यह है कि यहां हम जिस पारदर्शिता के मूल्य की बात कर रहे हैं, वह पारदर्शिता का मूल्य हम अपनी संस्था के अंदर भी उसको ला नहीं रहे, यह पारदर्शिता कि क्यों चीजें, किस ओर बदली जानी चाहिए, उनकी क्या आवश्यकता है, उसके विमर्श की स्थितियां अंदर क्यों नहीं उत्पन्न होतीं... प्रश्न ये है कि यह हुआ नहीं है, और अगर हुआ नहीं है तो दो चीजें हैं, कि यह संकल्पना थी कि सरकार अपने स्तर पर पहल करके व्यापक जन सहभागिता को खड़ा कर सकती है और खड़ा कर सकती है का मतलब ये है कि उसका जो भी स्वरूप विकसित होगा, उसका वो निरंतर समर्थन करने के लिए प्रतिबद्ध रह सकती है, यह संकल्पना इस कार्यक्रम में निहित की गयी। नंबर दो, इस कार्यक्रम के अन्दर जो विकेन्द्रीकरण की और पुनः विचार-विमर्श की, जन सहभागिता की जो पद्धतियां और प्रक्रियाएं स्थापित की गयीं वो अगर स्थापित की गयीं तो ऐसी होनी चाहिए, वे सामान्य समय जब कोई संकट नहीं है तब तो बहुत अच्छा काम करती हैं पर जब उनकी वास्तव में जरूरत है, जब उनकी कसौटी सामने रखी गयी हो कि अब उन प्रक्रियाओं को चूँकि परिस्थितियां बहुत दूसरे प्रकार की हैं, दूसरी ओर आप रूपान्तरित हो सकते हैं, उस समय ये सारी प्रक्रियाएं बेजान हो गयीं। ये जान क्यों छोड़ गयी क्योंकि बाहर से मैं इसी तरह देख रहा हूँ कि ये संकल्पना इस ढंग की है, उसके माध्यम से काम हो रहा है, इसमें कहा जा रहा है कि विकेन्द्रीकरण है, सहभागिता है तो मैं यह मानकर चल रहा हूँ कि सबसे ज्यादा विकेन्द्रीकरण, सहभागिता इसके स्ट्रेक होल्डर की है, उनको तो कम से कम अहसास है, गांव के आदमी को अगर छोड़ दें, अभी वो कहाँ है पता नहीं परन्तु जो स्ट्रेक होल्डर हैं उनको तो इस संकल्पना का ज्ञान होना आवश्यक है। पर वो तो समझते हैं कि इसके माध्यम से जो जनतांत्रिकरण का, सार्वजनीकरण का जो सूत्रपात कर रहे हैं, उसके लिए कौन सी प्रक्रियाएं और कैसी प्रक्रियाओं के साथ जबाबदेह रह सकते हैं। जबाबदेही का जो प्रश्न है वो इस चीज के प्रति जबाबदेही की बात है। अगर सर्वप्रथम निश्चित रूप से जनता के प्रति जबाबदेह हैं, तो जनता की सहभागिता से या सहभागिता को सुनिश्चित करने वाली जिन प्रक्रियाओं का अभी जिक्र किया जा रहा है, उन प्रक्रियाओं के प्रति जबाबदेही का प्रश्न है। तो मुझे केवल यही लगता है कि यह अधैर्य की स्थिति और असंवाद की स्थिति इस पूरे प्रयोग में क्यों कर उत्पन्न हुई ?

और अगर ये उत्पन्न हुई है तो शायद इस विषय पर यहां दो प्रश्न बचते हैं कि क्या, या तो उस मूल संकल्पना में ही कुछ जेनेटिक प्रॉब्लम है, कि इस ढंग से ये हो जायेगा, इस आशावाद

में ही पूरी समस्या है या इसमें समस्या नहीं है तो अभी हम सब लोग उतने तैयार नहीं है कि उस संकल्पना को हम आगे विकसित कर सकें, उसको घोषित कर सकें। हम उतने ही तैयार हैं जितने और जब तक हम अपने अपने ढंग से सुरक्षित हैं, अपने अपने हितों की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त हैं, तब तक वे प्रक्रियाएं चलती हैं और जैसे ही वहां वे कोई एक सीमा को लांघने लगती हैं तब हम दूसरी ओर, और बहुत जल्दी ही एकदम से पलट होती है। एकदम ऐसे पलटती है वो चीज तो हम सब चौंक जाते हैं। हालांकि चूँकि हम लोगों को, व्यक्तियों के अनुभवों का जीवन और प्रयासों का जीवन बहुत सीमित होता है समाज के और व्यापक इतिहास के प्रवाह के संदर्भ में, तो ये कहें कि इस संकल्पना को अभी मूर्त रूप देने के लिए हम मेच्योर नहीं है, हमारी स्थितियां अभी उतनी परिपक्व नहीं हैं कि हम उसका ठीक से निर्वाह कर सकें।

मुझे इस पूरी चीज में ये दो प्रश्न नजर आ रहे हैं, और तीसरा जो मूल प्रश्न है वो है कि व्यापक रूप से शिक्षा का जो कर्म है और शिक्षा की जो प्रक्रिया है, वो राज और सरकार की इच्छा पर कितनी छोड़ी जानी चाहिए और दूसरे अर्थों में समाज और राज, वो इसके सामाजिक महत्व को और इसकी व्यापक रूप से सामाजिक प्रक्रिया के महत्व को समझते हुए उन दायरों को खोले, जहां गैर राजकीय, राजकीय और औपचारिक पहल और प्रयासों से बाहर ये पूरा काम एक सोशाइटल इन्डेवर, एक सोसाइटल मिशन, सोशाइटल कन्सर्न के तौर पर हो, उनके लिए व्यापक मंच और व्यापक संभावनाएं जो हो सकती हैं उनकी तलाश की जाये। विनोद जी ने जो प्रश्न उठाया, उन्होंने अपने ढंग से इस बात को कहा, कि मूल में जो शिक्षा से जुड़ा सवाल है वो व्यापक जनसहभागिता का सवाल है और निश्चित रूप से उसे क्या केवल सरकार की इनायत पर समाजीकरण, गैर समाजीकरण का मुहँताज रहना चाहिए या उसका अपने ढंग से समाधान करें। मैं पहली संकल्पना के विपरीत नहीं बोल रहा हूँ, परन्तु कहीं उसके समान्तर इस तरह की स्थितियों पर भी काम करना चाहिए कि वो सरकार के ऐसे नियंत्रणों से जरूर बाहर हों कि अगर औचित्य अगर हमें बहुत स्पष्ट नहीं है तो फिर चीजों को बदलने का आग्रह न आये और वो जन आन्दोलन का स्वरूप हो सकता है, या क्या स्वरूप इसका हो सकता है, हमारे देश को अभी इसके बारे में देखना है, समझना है और जो लोग शिक्षा के काम से जुड़े हुए हैं उनको इस पर कोई न कोई निर्णय देर सवेर करने हैं।

मैं इन्हीं दो तीन सवालों के साथ अपनी बात समाप्त करता हूँ।